श्री तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी, जिन्हें साहित्य अकादेमी आज अपना सर्वोच्च सम्मान, महत्तर सदस्यता, प्रदान कर रही है, एक जाने-माने मराठी और संस्कृत विद्वान, समालोचक और दार्शनिक हैं।

श्री जोशी का जन्म 27 जनवरी 1901 को महाराष्ट्र के पिम्पलनेर नामक स्थान में हुआ। स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आपने अपने पिता से संस्कृत का अध्ययन किया जो स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। चौदह वर्ष की आयु में आपने वाई के प्रज्ञा पाठशाला मण्डल में प्रवेश लिया जहाँ विद्या की विभिन्न शाखाओं में विस्तृत पाठ्यक्रम संचालित किये जाते थे। आपने श्री नारायण मराठे से दर्शन और नव्य न्याय का अध्ययन किया।

सत्रह वर्ष की आयु में उच्च अध्ययन के लिए आप वाराणसी गये और बाद में संस्कृत कालेज, कलकत्ता से 1922 में तर्कतीर्थ की उपाधि विशेष योग्यता सहित प्राप्त की। उसी वर्ष आपने प्रज्ञा पाठशाला के संकाय में प्राध्यापक रूप में कार्यभार ग्रहण किया और धीरे-धीरे उन्नति करते हुए 1955 में इसके अध्यक्ष हुए।

राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्रमाणित होकर श्री जोशी ने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और 1930 तथा 1932 में दो बार जेल भी गये। आप दर्शन और राजनीति शास्त्र के सजग पाठक रहे। बाद में एम.एन. राय के प्रभाव में आये और नये मानववाद के सिद्धांत को विकसित करने के लिए उनके साथ कार्यरत रहे।

आपका प्रथम ग्रंथ **शुद्धिसर्वस्वम्** (1934) धार्मिक शुद्धीकरण के दार्शनिक आधार और अवधारणाओं के विषय में संस्कृत में लिखा गया प्रबंध है। उसी वर्ष आपने **धर्मकोश** के सम्पादन की महत्तर योजना प्रारम्भ की। यह छब्बीस खण्डों के 18000 पृष्ठों में फैला हुआ सच्चे अर्थों में एक चिरस्थायी कार्य है। इसमें 1500 ई.पू. से लेकर 18 वीं शताब्दी तक के धर्म तथा धर्मशास्त्रों के विभिन्न पक्षों के आकर ग्रंथ और उन पर लिखी गई टीकाएँ समाहित हैं। इसके बीस खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री जोशी ने अपने को मात्र धर्मशास्त्र के अध्ययन तक ही सीमित नहीं रखा है। साहित्यिक समालोचना पर आपकी दो मराठी पुस्तकें—**आनंद मीमांसा** (1938), जो रस और सौंदर्यशास्त्र के सिद्धांतों की समालोचनात्मक टीका है तथा **आधुनिक मराठी साहित्याची समीक्षा** (1973), जो आधुनिक मराठी साहित्यिक समालोचना के सिद्धांतों का अध्ययन है—विशिष्ट कृतियाँ मानी गयी हैं। आपकी अन्य दो कृतियाँ हैं: एक **हिन्दू धर्माची समीक्षा** (1940) जो हिन्दू धर्म की अवधारणाओं और संस्थाओं का समालोचनात्मक परीक्षण है, और दूसरी **जड़वाद** (1941) जो भारतीय और पाश्चात्य परम्पराओं में भौतिकवाद के इतिहास और विकास का एक विस्तृत सर्वेक्षण हैं। इन कृतियों से आपकी विद्वता के विस्तार और गहराई का पता चलता है।

श्री जोशी ने, जिन्हें गांधीजी ने अपने अस्पृश्यता विरोधी अभियान में हिन्दू धर्मशास्त्र के लिए मुख्य सलाहकार चुना था, सामाजिक-धार्मिक इतिहास में एक हलचल पैदा कर दी। आपने 1951 में पुनर्निर्मित सोमनाथ मंदिर में सांगोपांग पूजा-अनुष्ठान के लिए 150 पुजारियों के दल का नेतृत्व किया—और इसके बाद उपासना के लिए मंदिर के द्वार पिछड़े वर्गों सहित सारे समाज के लिए खोल दिये ।

आपको **वैदिक संस्कृतिचा इतिहास** (1952) पर मराठी के लिए प्रथम साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्रदान किया गया, जो 1947-54 के मध्य प्रकाशित कृतियों में श्रेष्ठ मानी गयी। यह कृति वैज्ञानिक मानववाद को नयी विश्व संस्कृति के अग्रदूत के रूप में स्थापित करते हुए वैदिक संस्कृति के विकास को प्रस्तुत करती है।

महाराष्ट्र सरकार ने आपको नवगठित साहित्य और संस्कृति परिषद (1960) का अध्यक्ष नियुक्त किया, जिसके तत्वावधान में आपने **मराठी विश्वकोश** के छब्बीस खण्डों में सम्पादन की विस्तृत योजना प्रारम्भ की। इनमें से तेरह खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री जोशी का एक अन्य विशिष्ट विद्वतापूर्ण योगदान **उपनिषदांचे मराठी भाषांतर** है जो अठारह प्रमुख उपनिषदों का अनुवाद है। आपने राजवाड़े की चुनी हुई रचनाओं को **राजवाड़े लेख संग्रह** नाम से और लोकमान्य तिलक की रचनाओं को **लोकमान्य तिलक लेख संग्रह** नाम से सम्पादित किया है।

श्री जोशी में पारम्परिक विद्वता और वैज्ञानिक दृष्टि का दुर्लभ समन्वय है। आपने देश और विदेश में दूर-दूर तक यात्राएँ की हैं। आपने अमरीका सरकार के निमंत्रण पर 1964 में अमरीका की यात्रा की और 1969 में विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने आप मॉस्को गये।

आपको 'राष्ट्रीय संस्कृत पण्डित' (1973) की उपाधि से विभूषित किया गया। बम्बई विश्वविद्यालय ने 1975 में आपको एल.एल.डी. की मानद उपाधि प्रदान की और भारत के राष्ट्रपति ने 1976 में आपको 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया।

एक विद्वान और साहित्यिक समालोचक के रूप में उत्कर्ष के लिए साहित्य अकादेमी अपना सर्वोच्च सम्मान, महत्तर सदस्यता, श्री तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी को प्रदान करती है।

Sri Tarkateertha Laxmanshastri Joshi, on whom the Sahitya Akademi is conferring its highest honour of Fellowship today is a distinguished Marathi and Sanskrit scholar, literary critic and philosopher.

Born on 27 January 1901 at Pimpalner in Maharashtra, Sri Joshi, after a formal preliminary education at school, studied Sanskrit under his father, himself a renowned scholar. At the age of fourteen he was admitted to Prajna Pathashala Mandal at Wai, which offered extensive courses in different branches of learning. He studied philosophy and 'Navya Nyaya' under the guidance of Sri Narayanshastri Marathe.

At seventeen he proceeded to Varanasi for higher studies, and later obtained, with distinction, the degree of Tarkateertha in 1922 from Sanskrit College, Calcutta. The same year he joined the faculty of Prajna Pathashala, and subsequently rose to be its President in 1955.

Imbued with the spirit of nationalism, Sri Joshi participated actively in the Independence Movement and suffered imprisonment twice, in 1930 and 1932. An avid reader of both philosophy and political science, he came under the influence of M. N. Roy and they worked together to evolve the concept of new humanism.

His first book *Shuddhisarvasvam* (1934) is a treatise in Sanskrit on the philosophical basis and concepts of religious conversion. The same year he took up the ambitious project of editing *Dharmakosha*, a work in twenty-six volumes spread over 18000 pages, out of which twenty volumes have been published so far. A truly monumental work, *Dharmakosha* consists of all the basic texts and commentaries thereupon, on the different aspects of Dharma and Dharmashastras, covering the period 1500 B C to the 18th century.

Sri Joshi has not confined himself to the study of *Dharmashastras* only. His two books in Marathi on literary criticism, namely *Ananda Mimamsa* (1938), a critical commentary on the theories of *Ras* and aesthetics, and *Adhunik Marathi Sahityachi Samiksha* (1973), a study of the tenets of modern Marathi literary criticism have been hailed as outstanding works. His other two books, *Hindu Dharmachi Samiksha* (1940), a critical examination of the concepts and institutions of Hinduism, and *Jadawad* (1941) a comprehensive survey of the history and development of materialism in Indian and western traditions, show the range and depth of his scholarship.

Sri Joshi, whom Gandhiji chose as his principal adviser on Hindu Dharmashastra in his campaign against untouchability, created a stir in socio-religious history. He led a panel of 150 priests to conduct highly complex and elaborate rituals at the shrine of the re-constructed Somnath Temple in 1951, and then threw it open for worship for all, including the less privileged sections of the society.

Vaidik Samskriticha Vikas (1952) won him the Sahitya Akademi Award, the first ever for the best published work in Marathi during 1947-54. The book traces the evolution of Vaidik culture, postulating scientific humanism as harbinger of a new world culture.

The Government of Maharashtra nominated him Chairman of its newly constituted Board for Literature and Culture (1960), and under its aegis he took up a massive project of editing *Marathi Vishwakosha* in twenty-six volumes, of which thirteen have so far been published.

Sri Joshi has another scholarly distinction to his credit. *Upanishadanche Marathi Bhashantar* is his translation of eighteen principal Upanishads into Marathi. He has also edited *Rajwade Lekh Sangraha*, the selected writings of Rajwade, and *Lokmanya Tilak Lekh Sangraha*, selections from Lokmanya Tilak.

A rare combination of traditional scholarship and scientific temper, Sri Joshi has travelled widely in India and abroad. He visited the USA in 1964 at the invitation of the U.S. Government, and the USSR in 1969 to participate in the World Religious Conference at Moscow.

He was honoured with the title of 'National Pandit' in Sanskrit (1973). The University of Bombay conferred on him the degree of LLD. (*honoris causa)* in 1975, and the President of India honoured him with 'Padmabhushan' in 1976.

For his eminence as a scholar and literary critic the Sahitya Akademi confers its highest honour, the Fellowship, on Sri Tarkateertha Laxmanshastri Joshi.

साहित्य अकादेमी महत्तर सदस्यता
1989
वक्तव्य
श्री तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी

भारतीय साहित्य का भविष्य

कवि तथा काव्यशास्त्रज्ञ दण्डी ने कहा है कि अगर शब्द-संज्ञक ज्योति न होती तो विश्व अंधकारयुक्त रह जाता। शब्द अर्थात् भाषा; साहित्य भाषा का विकसित रूप है। भाषा का अर्थ मानवता है। इसीलिए साहित्य मानवता के विकास का एक महान अंग है। अन्य प्राणी भाषा बोलते नहीं। भाषा और मानवता समव्याप्त तत्त्व हैं। अन्य प्राणियों के पास भावों का अनुभव प्रेम, क्रोध, भूख, प्यास, अन्न, संभोग और अन्य भावनाओं की व्यंजक ध्वनि है; लेकिन प्रज्ञा का संचय करने वाला ध्वनि का आविष्कार अर्थात् भाषा नहीं है। इसे अब भाषा-विज्ञानवेत्ताओं ने सिद्ध किया है। प्राणिसृष्टि का अंतिम विकसित आविष्कार मनुष्य है। मनुष्य का जीवन भाषा के अधीन है। मनुष्य की सामाजिकता भाषा के कारण अधिक समर्थ बनी है। विकासक्रम में मनुष्य प्राणी के अस्तित्व में आने पर वह जिस प्रज्ञा को लेकर आया अर्थात् अन्य प्राणियों की अपेक्षा बड़ा भारी मस्तिष्क लेकर आया, उस मस्तिष्क से जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है और जो कल्पनाविश्व निर्माण होता है उसके लिए भाषा की आवश्यकता हुई और उस अपरिहार्य प्रयोजन से मनुष्य शब्द निर्माण करने लगा, प्राप्त ज्ञान को शब्द के रूप में संचित करने लगा। भावनाओं का आविष्कार, वास्तव विश्व का ज्ञान और कल्पित विश्व की निर्मिति प्रधान रूप में निरंतर चलने वाले भाषा के कार्य हैं। इन कार्यों के योग से मनुष्य समाज जी सकता है। यह कार्य उसके हित की रक्षा करता है और हित का विस्तार भी।

'सहित' शब्द से साहित्य शब्द का निर्माण हुआ है। जिसमें हित भरा हुआ है वह सहित। अथवा वक्ता और श्रोता का सहभाव जिसके योग से निरंतर रहता है वह साहित्य है। अरस्तू ने मनुष्य की परिभाषा करते समय उसे राजनैतिक प्राणी कहा है; राजनैतिक जीवन अर्थात् अत्यंत उत्कट परस्परावलंबी सहजीवन है। इधर चार्ल्स डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत को प्रस्तुत करने पर मनुष्य की एक नयी व्याख्या सिद्ध हुई है। वह है "मॅन इज ए टेक्नॉलॉजिकल ॲनिमल।" मनुष्य विविध साधन निर्मिति के तंत्रज्ञान से युक्त प्राणी है; पक्षी, मधुमक्षिका आदि प्राणी साधन निर्माण करते हैं परंतु साधनों में परिवर्तन नहीं कर सकते या साधनों का परिवर्धन नहीं कर सकते। मनुष्य साधनों में परिवर्तन करता है, उनके गुणों को विकसित करता है उनकी शक्ति को बढ़ाता है और उनमें वैविध्य निर्माण करता है। अन्य किसी भी प्राणी में विविध साधनों का विस्तार करने की प्रज्ञा नहीं होती। इस तंत्रविस्तारकारक प्रज्ञा से मनुष्य ने भाषा का निर्माण किया। यह मात्र अब तक रहस्य ही रहा है कि मनुष्य भाषा का निर्माण कब करने लगा।

पिछले दो सौ वर्षों में मानव-शास्त्रज्ञों ने विश्व की साहित्यिक और असाहित्यिक सभी भाषाओं का अध्ययन किया। इस पृथ्वी पर जितने मानव समुदाय रहते हैं, उनकी भाषा और बोलियों का समग्र अभ्यास कर लेने पर सिद्ध हुआ है कि तिरसठ-चौसठ स्वर-व्यंजनों के अलावा अधिक घटक मानवी भाषा में मिलते नहीं। इन भाषाओं में से कुछ ही भाषाएँ सुसंस्कृत समाज की साहित्य भाषा या ग्रंथ भाषा बनी हैं। हर भाषा निरंतर परिवर्तित होती है। बोली या उपभाषा सुसंस्कृत मुख्य भाषा के प्रभाव में शनैः शनैः अस्तप्राय होती है। मुख्य भाषाएँ लेखनिविष्ट होकर व्यावहारिक, मानवी विचारपरामर्श और विचार निवेदन की भाषा बनने पर वे अधिक टिकाऊ बनती हैं। ज्ञान-विज्ञान की और कलात्मक आविष्कार की जो साहित्यिक भाषाएँ रहती हैं उनका संरक्षण करने की प्रवृत्ति मनुष्य में रहती है जैसे संस्कृत।

ऐसी संरक्षित साहित्यनिष्ठ जनभाषा एक विशिष्ट भौगोलिक प्रदेश के समाज में आर्थिक और राजनैतिक जीवन में संचार का साधन बनती है, तब वह राजनैतिक शक्ति बनती है और विशिष्ट प्रदेश के सुसंस्कृत भाषिक समाज में एक सामूहिक श्रेष्ठ अहंता उत्पन्न होती है, जिसे राष्ट्रीयत्व कहा जाता है। विशिष्ट भूप्रदेश में निवास करने वाला भाषिक समाज राष्ट्रीय अधिष्ठान बनता है। राष्ट्रवाद के इतिहास में इसी अधिष्ठान पर अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में यूरोप और अमेरिका में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद का निर्माण हुआ।

इधर बीसवीं शताब्दी में आधुनिक यातायात के गतिशील साधनों के निर्माण होने के बाद भिन्न भाषा के सुसंस्कृत समाज दैनदिन भाषांतर के तंत्रज्ञान से मन से निकट आये हैं। भाषांतर पद्धति विश्वव्यापी मानव संस्कृति की एकात्मता की अभिवृद्धि करने लगी है। भारतीय राष्ट्रीयता भाषानिष्ठ न रहकर बहुभाषिक और मानव-संस्कृतिनिष्ठ हो रही है। यह सांस्कृतिक यात्रा मानवी समाज की एकात्मक संस्कृति की ओर हो रही है। यह नया इतिहास निर्माण हो रहा है।

साहित्य अकादेमी भारत के गत हज़ार वर्षों में विकसित हुई साहित्य सम्पन्न जनभाषाओं का नित्य समालोचन करती है और भारतीय साहित्यिक भाषाओं के विकास की जानकारी लेती है। भारत की प्रादेशिक भाषाओं का विकास हो रहा है; लेकिन इन प्रादेशिक भारतीय भाषाओं के विकास को महत्त्वपूर्ण दो धोखे उत्पन्न हुए हैं। पहला धोखा यह कि प्रत्येक प्रदेश राज्य के उच्च ज्ञानविज्ञान के विद्यापीठ की शिक्षा का माध्यम मुख्यतः अंग्रेज़ी ही रहा है। इसका कारण आधुनिक विज्ञान और तंत्रज्ञान विस्तृत, गाढ़ा, अद्यतन स्वरूप में प्रादेशिक भाषाओं में— मराठी, गुजराती, हिन्दी, बंगाली, तमिल, कन्नड आदि भाषाओं में निर्माण नहीं हुआ। इसलिए अंग्रेज़ी का आश्रय लेना अनिवार्य हुआ है। केवल उच्च शिक्षा में ही नहीं तो माध्यमिक शिक्षा में भी अंग्रेज़ी माध्यम का आकर्षण सुशिक्षित वर्ग में विशेष रूप से मिलता है। अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यालय में अपने पुत्र या पुत्री को प्रवेश मिले इसके लिए मध्यम-वर्गीय माँ-बाप उत्सुक रहते हैं, उसके लिए प्रयत्नशील रहते हैं। यह अंग्रेज़ी का संकट अपनी प्रादेशिक भाषाओं के लिए बाधक न बने इसके लिए उपाय योजना करना आवश्यक है। अंग्रेज़ी आवश्यक है ही और इसके साथ प्रादेशिक भारतीय भाषाओं का ज्ञान-विज्ञान सतत सम्पन्न होते रहना भी ज़रूरी है। आधुनिक विज्ञान और तंत्रज्ञान प्रादेशिक भाषाओं में भी पढ़ाने की व्यवस्था अनिवार्य और अपरिहार्य विषय के रूप में शिक्षा मंत्रालय को करनी चाहिए। विद्यार्थी को उपाधि प्राप्त करने के लिए जिस तंत्रज्ञान और विज्ञान के लिए अंग्रेज़ी में सौ गुण रखे जाते हैं, उसी तंत्रज्ञान और विज्ञान के लिए प्रादेशिक भाषा में उतने ही गुण रखने चाहिए। इस प्रकार का बंधन होना चाहिए कि अंग्रेज़ी और प्रादेशिक भाषा में विशिष्ट संख्या में गुण प्राप्त करने पर ही उत्तीर्ण माना जाय।

दूसरा संकट प्रादेशिक भाषाओं के और साहित्य के क्षेत्र में उत्पन्न हुआ है और वह है संस्कृत भाषा की उपेक्षा। अपनी सभी भारतीय भाषाओं को शब्द विस्तार की सामर्थ्य संस्कृत भाषा ने दी है। विज्ञान और तंत्रज्ञान में प्रादेशिक भाषाओं का विकास और विस्तार होना है तो संस्कृत भाषा का माहात्म्य बढ़ाना चाहिए। उसके साहित्य का इतिहास विश्व की किसी भी भाषा की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। ऋग्वेद की साहित्यशैली विश्वात्मक दिव्यजीवन दर्शन, अंतः प्रज्ञा और आनंद को जन्म देती है।